

पूर्व कथन

“किसी चीज पर इसलिए विश्वास मत करो कि तुम्हें वैसा बताया गया है, या कि परम्परा से वैसा होता आया है, अथवा स्वयं तुमने उसकी कल्पना की है। तुम्हारा शिक्षक जो कहता है उस पर महज इसलिए विश्वास मत करो कि तुम उसका आदर करते हो, किन्तु उचित परीक्षण और विश्लेषण के बाद जो तुम्हें कल्याणकारी लगे, सर्व हितकारी लगे, उसी सिद्धांत पर विश्वास करो। उस पर अडिग रहो और उसे अपना मार्गदर्शक मानो।” यह बुद्ध का आग्रह है। वे चाहते हैं किसी सिद्धांत पर विश्वास करने से पहले उसका परीक्षण किया जाये। उसका विश्लेषण किया जाये। यह देखा जाये कि वह सिद्धांत - कल्याणकारी है क्या? वह सिद्धांत सर्व हितकारी है क्या? परीक्षण और विश्लेषण आवश्यक हैं। फिर चाहे वह सिद्धांत हमें बताया गया हो (किस के द्वारा?) परंपरा से मिला हो, हमने स्वयं ने उसकी कल्पना की हो या फिर हमारे शिक्षक ने ही वह सिद्धांत हमें दिया हो। अंतिम निर्णय हमें, स्वयं ही करना होगा। परीक्षण एवं विश्लेषण हमें स्वयं ही करना होगा। अर्थात् अपने मार्ग दर्शक सिद्धांत हमें स्वयं ही चुनने होंगे।

पर प्रत्येक चुनाव एक दायित्व अपने साथ लाता है। चुनाव, अपने आप चुनाव, अपनी स्वतंत्रता, अपनी स्वायत्तता का उपयोग करना है। अपनी स्वायत्तता की अभिव्यक्ति है। पर प्रत्येक चुनाव, उस चुनाव के परिणामों, अच्छे-बुरे दोनों परिणामों को अपनाने का, स्वीकार करने का वादा भी है। अर्थात् स्वायत्तता चयन का प्रत्येक उपयोग अपने साथ दायित्व भी लाता है। अतः चुनाव परीक्षण एवं विश्लेषण के बाद उसके आधार पर ही होना उचित है।

बुद्ध ने जब यह बात कही थी उस वक्त समाज की स्थिति भिन्न थी। मुझे नहीं पता कि उनका सर्वहितकारी से आक्षेप वही था या नहीं जो हम आज समझते हैं। फिर भी “सर्वहितकारी” की व्याख्या आज की परिस्थिति के अनुसार कर लेने की कोशिश बहुत अनुचित नहीं लगती। एक बहु सांस्कृतिक समाज में “सर्व हितकारी सिद्धांत” शायद खोज का विषय उतना नहीं होता जितना की सह-सृजन का होता है। खोज में यह भाव निहित है कि सर्व हितकारी सिद्धांत समान निरपेक्ष रूप में पूर्व निर्मित कहीं गूढ़ स्थान पर रखा हुआ है। अब खोजकर्ता को बस उसे ढूँढ निकालना भर है। “सह-सृजन” में भाव यह है कि हमें “सर्व हितकारी सिद्धांत” की आवश्यकता है। अतः हम सब मिलकर अपने लिए एक ऐसा सिद्धांत बना लेते हैं।

पर “सर्व हितकारी सिद्धांत” का सार्वजनिक, सामाजिक निर्माण कैसे करें? आज के बहु सांस्कृतिक भारतीय समाज में इस प्रश्न से जुझने की सामर्थ्य देना शिक्षा का काम है। यह अलग बात है कि हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली इस के विपरीत ही कुछ कर रही है, इस तरफ विकास के लिए कुछ नहीं कर रही। पर यदि शिक्षा में ऐसा करने का, “सर्व हितकारी सिद्धांत” की सामूहिक निर्मिति की तैयारी का, प्रयत्न कोई करना चाहे तो उसकी विधि क्या होगी? उसके लिए शिक्षक को क्या करना होगा?

इतना तो तय है कि यह प्रयत्न पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर ही संभव है। अपने जीवन मूल्यों को सर्वश्रेष्ठ मानने का पूर्वाग्रह, अपने ज्ञान को परम सत्य मानने का पूर्वाग्रह, अपने तर्क को प्रखरतम मानने का पूर्वाग्रह। दूसरे की बात सुननी है, समझनी है, तो इन पूर्वाग्रहों से मुक्त करने वाली कोई ‘विद्या’ या ‘विधा’ चाहिये। (‘सः विद्या या विमुक्तये’ की क्या हम ऐसी व्याख्या नहीं कर सकते। इसके लिए इस उक्ति को शायद विष्णुपुराण के उस संदर्भ से मुक्त करना पड़े। जिसमें यह मूलतः आई है।)

प्रस्तुत लेख “सुकरातीय विधि के बारे में भ्रांति” में बॉब रीश का कहना है कि सुकरात की विधि का एक स्वरूप ऐसा हो सकता है जिसे पूर्वाग्रह भंजक विधि के रूप में प्रयोग किया जा सके। और इस विधि का यह स्वरूप समकालीन प्रजातांत्रिक समाज में एक सशक्त शिक्षण विधा के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

मुझे लगता है कि उच्च प्राथमिक स्तर पर बच्चों के साथ सुकरातीय संवाद का समर्थ उपयोग संभव है। और शिक्षक शिक्षण में तो यह बहुत ही कारगर तरीका हो सकता है, होता है। किसी शिक्षक शिक्षणार्थी समूह में सर्वमान्य सिद्धांतों की खोज स्वतः ही एक जीवंत संवाद आरंभ कर सकती है।

बॉब रीश स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय से संबद्ध हैं। प्रस्तुत लेख उनके अंग्रेजी लेख ‘कन्फ्यूजन अबाउट दि सोक्राटिक मेथोड: सोक्राटिक पैराडोक्सिज एण्ड कोन्टेपरेरी - इनवोकेशनस आफ सोक्रटीज’ का अनुवाद है। उन का मूल लेख “फिलासफी ऑफ एजुकेशन, 1998 (सं. स्टीवन टोगर, मिलराविले विश्वविद्यालय) में प्रकाशित हुआ है।

□ रोहित धनकर

सुकरातीय विधि के बारे में भ्रांति

□ बॉब रीश

अनुवाद : संतोष शर्मा

किसी भी साधारण व्यक्ति से अगर यह सवाल किया जाये कि “सुकरात कौन थे और उन्होंने क्या किया ? ” तो संभवतः हमें यही जवाब मिलेगा कि सुकरात एक प्राचीन यूनानी दार्शनिक थे जो अपने अविरल तर्कों से लोगों को सदा परेशान किया करते थे और अन्त में मृत्युदण्ड के भागीदार बने । सुकरात द्वारा शान्तिपूर्वक जहर का प्याला पी लेने के लगभग ढाई हजार वर्षों बाद हम उन्हें उनकी अविरल प्रश्न पूछते रहने की आदत एवं एक सुविचारित जिंदगी जीने की निरन्तर मांग के लिए याद करते हैं । वस्तुतः आम विमर्श में सुकरात की छवि एवं उनकी पद्धति एक दूसरे का पर्याय ही हैं ।

समकालीन दार्शनिक भी इसी आम मत को दोहराते हैं । ग्रैगोरी व्लास्तोस ने अपना संपूर्ण जीवन सुकरात के अध्ययन में बिताया । उनका मानना है कि सुकरात की पद्धति ही उनका सबसे बड़ा योगदान है जो कि मनुष्य जाति की “महानतम उपलब्धियों” में से एक है । व्लास्तोस का तर्क है कि सुकरात के जीवन के परिणाम, जीवन जीने संबंधी निष्कर्ष, इतने महत्वपूर्ण नहीं हैं जितना कि उनके द्वारा अपने जीवन को बिताने का ढंग एवं जांच पड़ताल की वह शैली है जिसे उन्होंने जन्म देकर भावी पीढ़ी के लिए वसीयत के रूप में छोड़ दिया । वास्तव में दार्शनिकों के अलावा विरला ही कोई होगा जो यह जानता हो कि सुकरात के अपने वास्तविक विश्वास (जीवन के बारे में मान्यतायें) क्या थे । दूसरे महान चिंतकों के विपरीत सुकरात की मुख्य धरोहर मनुष्य जाति के ज्ञान भण्डार में बढ़ोत्तरी न होकर एक अध्यापन शैली में है, (ज्ञान की) कोई ठोस सामग्री नहीं बल्कि एक प्रक्रिया है । यह कहने में थोड़ी ही अतिशयोक्ति होगी कि सुकरात के लिए एवं उनके बारे में हमारी समझ के लिए उनकी पद्धति ही सब कुछ है ।

पर सुकरात की उपलब्धियों के बारे में आम राय होने के बावजूद भी यह स्पष्ट नहीं है कि आखिरकार उनकी पद्धति है क्या? विशेषरूप से यह पद्धति, सुकरात के संवादों में और आजकल इसके आह्वानों में, काम क्या आती है ? यह लेख सुकरात की पद्धति का विश्लेषण प्लेटो के संवादों में चित्रित वास्तविक सुकरात के साथ आज के संदर्भ में उसकी प्रासंगिकता को जोड़कर करता है । मैं इस लेख में दो मुख्य प्रश्नों पर विचार करूंगा जो सुकरात की पद्धति की कोई भी समझ बनाने के लिए नितांत आवश्यक है । प्रथम प्रश्न है: क्या सुकरात के पास ज्ञान था ? या क्या उन का

अज्ञानी होने का दावा एक ईमानदार दावा था ? दूसरा, क्या सुकरात की पद्धति सत्य की ओर ले जाती है ? इसके पश्चात मैं सुकरात एवं उनकी पद्धति की समकालीन समझ पर यह दिखाते हुए विचार करूंगा कि उपरोक्त प्रश्न किस प्रकार इनके बारे में हो रही समकालीन भ्रांतियों पर प्रकाश डालते हैं ।

अन्त में मैं सुकरातीय पद्धति के एक विशिष्ट स्वरूप की संक्षिप्त रूपरेखा खींचूंगा । सुकरातीय विधि का यह आधुनिक स्वरूप सत्य को एक नियामक लक्ष्य की तरह देखता है और नागरिक शिक्षा के लिए बहुत ही उपयुक्त है ।

सुकरात की पद्धति के बारे में भ्रम का कारण किसी हद तक इसकी परिभाषा ही है । कुछ विद्वानों का मानना है कि सुकरात के पास कोई विशिष्ट पद्धति थी ही नहीं, अतः हमें सुकरात की पद्धति के नाम पर किसी पद्धति विशेष की बात ही नहीं करनी चाहिये । इनका कहना है कि सुकरात के पास शिक्षण शैलियों का एक पूरा पिटारा था जिनका कोई एक नामकरण करना मुश्किल है । वहीं पर अन्य विद्वान मानते हैं कि सुकरात एक ही शिक्षण विधि का लगातार प्रयोग करते हैं । उपरोक्त बहस में मैं कोई भी एक पक्ष नहीं लूंगा लेकिन सुविधा के लिए सुकरात की पद्धति या सुकरातीय पद्धति शब्दों का प्रयोग करता रहूंगा, इस लेख के उद्देश्य से; जो कि संवादों के सुकरात एवं सुकरात की समकालीन छवि दोनों से ही बराबर का संबंध रखता है, सुकरात की दो विशिष्ट रणनीतियों को चिन्हित करना आवश्यक है : **अलेंकस्** एवं **अपॉरिया** ।

सुकरात की प्रश्न करने की शैली का एक उद्देश्य था लोगों के साथ जिरह एवं उनकी बात का खण्डन-और इस खण्डन एवं जिरह को ग्रीक लोग **अलेंकस्** कहते थे। **अलेंकस्** सुकरात की पद्धति का मुख्य आधार है, क्योंकि इस जिरह एवं खण्डन के माध्यम से ही सुकरात लोगों को शर्मिदा करते हुए यह मानने को मजबूर करते थे कि उनके विश्वास गलत हैं व उन पर पुनर्विचार की आवश्यकता है । इस प्रकार **अलेंकस्** के प्रयोग ने सुकरात के प्रतिवादियों को एक नई खोज के लिए अग्रसर किया; उनकी विवेक बुद्धि पर छाये जालों को हटाया । **अलेंकस्** विधि नये निर्माण के लिए पुराने को तोड़ती है ।

अलेंकस् का तरीका बिल्कुल सीधा है । यह संभाषी(संवादी) के प्रत्येक प्रतिपादन की सूक्ष्म परीक्षा करते हुए यह देखता है कि क्या सामने वाले व्यक्ति के विश्वासों का संपूर्ण समुच्चय सुसंगत है ?

सुकरात प्रायः सदैव ही प्रतिवादी के ऐसे किसी विश्वास को स्वीकार करवाने में सफल रहते हैं जो उसी के द्वारा पूर्व में कहे गये कथन का विपरीत हो और इस प्रकार उसे अंतरविरोध की स्थिति में ले जाते हैं। उदाहरणस्वरूप जार्जियस में केलीक्लीज पहले यह दावा करता है कि आनंद सुख से भिन्न है। लेकिन सुकरात के प्रश्न करने पर कहता है कि सुख एवं आनंद एक ही है। इस पर सुकरात जबाब देते हैं कि केलीक्लीज तब तुम अपने पूर्व कथन को नष्ट कर रहे हो (झुठला रहे हो), अगर तुम अपने ही विश्वासों के बारे में विरोधाभासी कथन बोलते हो तो तुम मेरे साथ सत्य की खोज नहीं कर सकते। यहां सुकरात हठी केलीक्लीज से एकदम कड़ी और सीधी बात कहते हैं। पर अनेक अन्य संवादों में भी इस प्रकार की टिप्पणियां सर्वत्र देखने को मिलती हैं।

अलेंकस् का सहज परिणाम **अपॉरिया** या संदेह है। प्रतिवादी सुकरात के साथ खण्डन की इस प्रक्रिया से गुजरने के पश्चात अपने पुराने विश्वासों पर कायम नहीं रह पाते और इस प्रकार एक किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में आ जाते हैं। इस संशयपूर्ण अनिश्चय की अवस्था का एक क्लासिकी उदाहरण मेनो का वह वक्तव्य है जो उसने सदाचार पर सुकरात की जिरह के उपरान्त दिया:

“सुकरात, तुमसे मिलने से पहले ही मुझे कहा गया था कि तुम एक बहुत उलझे हुए व्यक्ति हो और सामने वाले को भी इसी हालत में पहुंचा देते हो। इस वक्त मुझे ऐसा लग रहा है जैसे तुम मेरे ऊपर अपना जादू-टोना कर रहे हो और मुझे वशीभूत किये हुए हो, जब तक कि मैं पूर्णतया असहाय न हो जाऊं... मेरा दिमाग और जुबान दोनों सुन्न पड़ गये हैं और मेरे पास तुम्हारे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है। यह सच है कि मैं सैकड़ों बार सदाचार पर बोल चुका हूं। बहुधा बहुत से श्रोताओं के सामने अपने विचारों पर अडिग रहा हूं, और मैं सोचता था बहुत अच्छी तरह से मैंने बोला है। और अब मैं यह तक नहीं बता सकता कि सदाचार होता क्या है?”

अपने प्रतिवादियों पर **अलेंकस्** का प्रयोग करके सुकरात उनसे अपनी अज्ञानता स्वीकार कराकर उन्हें झूठे विश्वासों से बचाता है। सुकरात के अनुसार अपने आप को अज्ञानी स्वीकार करना, गलत विश्वासों को अपनाने से कहीं बेहतर है। लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण है संदेह (**अपॉरिया**) जो जिज्ञासा उत्पन्न करता है। अपने पुराने विश्वासों की निश्चितता भंग होने पर सुकरात के प्रतिवादियों को इस बात कि जरूरत महसूस होती है कि उनको अपनी खोज नये सिरे से करनी चाहिए। एक बार संदेह जागृत हो जाने पर सुकरात की पद्धति का विध्वंसात्मक चरण समाप्त हो जाता है एवं तत्पश्चात सुकरात एवं उनके समान्वेषी समान धरातल पर आ जाते हैं। सत्य या ज्ञानी होने के जानकार का अभिमान छोड़कर संवाद द्वारा एक सामूहिक खोज के लिए तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार **अलेंकस्** की तीखी जिरह और उसके परिणाम स्वरूप

होने वाला **अपॉरिया** विनाशकारी नहीं बल्कि पूरी तरह सुधारात्मक साबित होते हैं।

सुकरात की पहली विरोधोक्ति : बुद्धिमान के अज्ञान का सवाल

सुकरात की पद्धति की बहुत ही साधारण तस्वीर पेश करने के पश्चात मैं दो विरोधाभासों की व्याख्या करना चाहता हूं जो इस पद्धति के बारे में हमारी समझ में उलझन पैदा करते हैं। प्रथम विरोधाभास को हम बुद्धिमान के अज्ञान का सवाल कह सकते हैं, और इसे इस प्रकार रख सकते हैं - क्या सुकरात एक मताग्राही और अनाड़ी व्यक्ति थे? सुकरात बार-बार यह दोहराते हैं कि उन्हें किसी प्रकार के ज्ञान या सत्य की प्राप्ति नहीं है और इस अज्ञान के बोध में ही उनकी बुद्धिमानी निहित है। लेकिन अनेक बार वह ऐसा बोलते हैं, व आचरण भी करते हैं जैसे कि उन्हें वास्तव में ज्ञान की प्राप्ति है तथा लगता है कि वे आत्मविश्वास के साथ दूसरों को वह ज्ञान बांट रहे हैं। दोनों दावे एक साथ सच नहीं हो सकते।

एक तरफ सुकरात हठपूर्वक यह दोहराते हैं कि बुद्धिमान होने की उनकी ख्याति इस बात को स्वीकार करने में है कि “ज्ञान के मामले में मैं बिल्कुल ही नकारा हूं”। सुकरात कहते हैं कि दूसरों के साथ वार्तालाप के समय यही उजागर होता है कि “हम में से किसी के पास भी गर्व महसूस करने लायक ज्ञान नहीं है।” सुकरात अपने प्रतिवादियों को सतत खण्डन के माध्यम से चकरा देते हैं और तब वे उन्हीं सुकरात से पूछते हैं कि वास्तव में सच क्या है? तब जैसा कि क्रिसियाज के साथ उन्हें बात करते हुए देखते हैं, सुकरात आश्चर्यचकित होकर जबाब देते हैं “क्रिसियाज, तुम मेरे पास आये हो मानो कि मैंने स्वीकार किया हो कि जो सवाल मैं कर रहा हूं उनका जवाब मैं जानता हूं। और तुम चाहते हो कि मैं यह मान लूं, जबकि तथ्य यही है कि समय समय पर जो सामने आता है उसका सत्य मैं तुम्हारे साथ मिलकर खोजता रहता हूं। क्योंकि मैं स्वयं कुछ नहीं जानता”। इस प्रकार का रवैया सुकरात के समस्त संवादों में बार-बार दिखाई देता है।

दूसरी तरफ उसी समय व उसी संवाद में सुकरात ऐसे बोलते हैं जैसे उनका ज्ञान निश्चित व विश्वसनीय है। अपने प्रतिवादियों से स्वयं का बचाव करते समय सुकरात यह कहते हैं कि जो लोग उसे जानते हैं उनके लिए यह प्रत्यक्ष है कि “मुझमें एक अच्छे वक्ता का हुनर बिल्कुल भी नहीं है यदि अच्छे वक्ता से उनका तात्पर्य सत्य बोलने वाले से नहीं है” (एपॉलिजी, 17 बी)।

इसी तरह सुकरात कहते हैं कि उन्हें नहीं मालूम कि मृत्यु के बाद क्या होगा। लेकिन “मुझे यह मालूम है कि अपने से वरिष्ठ का चाहे वह ईश्वर हो या मनुष्य, आज्ञापालन न करना दुष्टतापूर्ण व अनादरणीय है” (एपॉलिजी 29 बी)। यहां देखते हैं कि सुकरात नैतिक सत्य के बारे में अपने ज्ञान को स्पष्ट स्वीकार करते हैं और

कहते हैं कि वे गलत काम नहीं करेंगे। इसी विश्वास पर वह अंत तक अडिग रहते हैं, उनका यह हठ उन्हें मृत्युदंड का भागी बनाता है।

लेकिन इसी विरोधाभास को प्रदर्शित करने वाला एक बेहद रोचक लेखांश गार्जियाज में देखने को मिलता है जहां एक ही सांस में सुकरात अपनी अत्यंत अज्ञानता एवं ज्ञान की अत्यंत निश्चितता की घोषणा करता है। सुकरात कैलीक्लीज के साथ तर्क करते हैं कि दूसरों को हानि पहुंचाने से अच्छा (बेहतर) है हानि भुगतना। और एक तीखी बहस के पश्चात सुकरात दृढ़ता से दावा करते हैं कि “ये तथ्य वैसे ही हैं जैसे मैंने अभी कहा, यह इससे पहले के संवाद में सिद्ध हो चुका है। और ये बहुत मजबूती से आपस में गुंथे हुए हैं, एक दूसरे से जुड़े हुए हैं - मोटी भाषा में कहें तो - लौह-तर्क या वज्र-तर्क से आपस में बंधे हैं। ...और जब तक तुम या कोई तुम से भी अधिक साहसी (तार्किक) इनको (तर्क बंधन को) खोल न दे, सत्य कहना हो तो वही कहना होगा जो मैं कह रहा हूं। क्योंकि मैं सदा एक ही बात कहता हूं - कि इन मामलों में मैं सत्य का ज्ञाता नहीं हूं।”

यहां सुकरात अपने दावों की सच्चाई एवं कैलीक्लीज के दावों में असंगति एवं विरोधाभास को प्रमाणित करने के लिए कसर नहीं छोड़ता है। जैसा कि व्लास्तोस टिप्पणी करते हैं “कोई भी नैतिक दार्शनिक किसी जोखिम भरी मान्यता की सत्यता पर इतना सकारात्मक विश्वास नहीं दर्शा पाया है जितना सुकरात ने दर्शाया है।” फिर भी वह खुद के अज्ञानी होने का दावा करते हैं। यह कैसे हो सकता है कि किसी विषय पर प्रस्तुत तर्क लौह या वज्र जैसे सशक्त गुंथे हुये हों लेकिन उसी विषय की सच्चाई का ज्ञान भी नहीं हो? इस विरोधाभास की हम कैसे व्याख्या करें?

विद्वान इस पर एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वान मानते हैं कि सुकरात का अपने आपको अज्ञानी मानना एक शैक्षणिक चाल मात्र थी। इस व्याख्या के अनुसार सुकरात द्वारा प्रदर्शित अज्ञानता दूसरों को बहस की तरफ आकर्षित करने, उनके मत पर खण्डन विधि के प्रयोग करने के अवसर बनाने के लिए एक चाल मात्र होती थी। दूसरे विद्वानों का मानना है कि सुकरात अपने अज्ञानी होने के मामले में ईमानदार है। इस व्याख्या के अनुसार ज्ञान के बारे में सुकरात के सकारात्मक कथनों में हमेशा कुछ अनिश्चितता व संशोधन की संभावना दिखाई पड़ती है। कुछ अन्य विद्वान व्यक्ति द्वारा प्राप्त अलग अलग प्रकार के ज्ञान में विभाजन करते हैं और सुकरात कौन सा ज्ञान रखते हैं, कौन सा ज्ञान नहीं रखते हैं, में भेद करने का प्रयास करते हैं। अन्त में, कुछ अन्य विद्वान मानते हैं कि सुकरात को केवल साधारण ज्ञान प्राप्त है, पाण्डित्य नहीं।

सुकरात की दूसरी विरोधोक्ति : पद्धति के लक्ष्य से जुड़ा प्रश्न

दूसरी विरोधोक्ति प्रथम विरोधोक्ति से बहुत करीब से संबंधित होते हुए भी इससे स्पष्ट तौर पर भिन्न है। इस विरोधोक्ति को हम “पद्धितीय लक्ष्य के प्रश्न” का नाम दे सकते हैं। सुकरात की पद्धति के परिणाम क्या हैं? सुकरात स्वयं इस पद्धति के व्यस्ततम अभ्यासी होते हुए भी किसी ज्ञान या सत्य की प्राप्ति का दावा नहीं करते हैं तो वे किस आधार पर यह दावा कर सकते हैं कि उनकी पद्धति सत्य की तरफ ले जायेगी? अगर सुकरात की पद्धति का केन्द्रीय बिन्दु खण्डन है तो इस पद्धति का नतीजा सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकता, वरन यह केवल प्रतिवादी द्वारा रखे गये विभिन्न दावों के अंतर्विरोधों को ही स्थापित कर पायेगी। सुकरात की पद्धति तार्किक संगतता का ही परीक्षण करती दिखाई पड़ती है, सत्य सिद्ध किये जा सकने वाले दावों का नहीं।

सत्य की खोज में अपनी पद्धति की क्षमता का सुकरात प्रायः ढिंढोरा पीटते हैं। न्यायिक प्रणाली से, जो सत्य स्थापित करने के लिए अनेक गवाहों पर निर्भर रहती है, अपनी पद्धति को भिन्न बताते हुए सुकरात कहते हैं, “अगर तुम इससे अच्छे खण्डन की कल्पना नहीं कर सकते हो तो उसे मुझ पर छोड़ दो क्योंकि मेरी बात की सच्चाई स्थापित करने के लिए कम से कम एक गवाह कैसे पेश करना है यह मैं जानता हूं, यह गवाह वह व्यक्ति होगा जिससे मैं जिरह कर रहा हूं।” और इसके तत्काल बाद ही सुकरात पोलुस से पूछते हैं “क्या यह सिद्ध नहीं हुआ कि यह सच है?”, जिसके प्रत्युत्तर में पोलुस कहते हैं कि “स्पष्ट रूप से।” कुछ विद्वान इससे सहमत हैं। इस प्रकार लाजलो वर्सेनी टिप्पणी करते हैं कि सोफिस्टों की तुलना में “सुकरात ने केवल सत्य को ही जानने पर जोर नहीं दिया बल्कि सत्य तक कैसे पहुंचा जाए इसका रास्ता भी दिखाया।” इसी तरह जार्ज मकडानाल्ड रॉस लिखते हैं कि “सुकरात विश्वास करते थे कि उनकी पद्धति विश्वसनीय थी, बशर्ते सत्य को अपना लक्ष्य मानने के लिए सभी सहभागी तैयार हों। तब तर्क में (शास्त्रार्थ में) जीतना और सत्य को पाना दोनों एक ही बात होगी।” इस मत के अनुसार खोज के अन्त में सत्य का प्रकाशन होगा, इसका सुकरात की पद्धति में कोई ठोस वादा नहीं है। पर यदि सहभागियों के बीच सहमति हो पाई तो वही सहमति सत्य को निरूपित करेगी।

फिर भी सुकरात के प्रायः अज्ञानी होने की घोषणा एवं सुकरात की गवेषणा के सत्य परिणाम प्राप्त होने के दावों को एक साथ स्वीकार करना असंभव है। यदि किसी को भी सुकरातीय पद्धति से सत्य की प्राप्ति हुई हो तो वह व्यक्ति निश्चित रूप से सुकरात ही होना चाहिये। फिर भी संवादों के मध्य सुकरात दृढ़तापूर्वक बार बार कहते हैं, “मैं ज्ञानी होकर नहीं बोल रहा हूं, मैं तो तुम्हारे साथ

ज्ञान की खोज कर रहा हूँ।” यदि सुकरात अपनी पद्धति का प्रचार सत्य की तरफ अग्रसर करने वाली पद्धति के रूप में करते हैं तो फिर स्वयं उनके पास सत्य क्यों नहीं है ?

खण्डन विधि का वास्तविक प्रयोग भी इतना ही समस्याप्रद है। खण्डन विधि किसी दावे को गलत साबित करने का तरीका है। इसमें संवादी के वर्तमान दावे से उसके किसी पूर्व दावे का परस्पर विरोध स्थापित किया जाता है। यह संवादियों के अनेकों विश्वासों के बीच विरोधों को दिखाता है। तो फिर मात्र खण्डन के आधार पर **अल्लेक्स** सत्य को प्राप्त कैसे कर सकता है ? या दूसरी तरफ से देखें तो खण्डन विधि असत्यता को स्थापित कैसे कर सकती है? व्लास्तोस और रिचर्ड रोबिन्सन ने इस विरोधाभास का गहन अनुसंधान किया है। व्लास्तोस पूछते हैं, “सुकरात किसी दावे को गलत कैसे ठहरा सकते हैं ? जबकि उन्होंने मात्र इतना ही सिद्ध किया है कि तार्किक रूप से वह दावा पूर्व में स्वीकृत मान्यता - ऐसी मान्यता जिसकी सत्यता के लिए कोई तर्क पेश नहीं किया गया है - से असंगत है। क्या वे इस बात से अवगत नहीं होंगे कि तर्क में ऐसा दावा करने का अधिकार नहीं है ?” ऐसा लगता है कि कोई संवादी अपनी पूर्व स्वीकृत मान्यता को मात्र वापस लेकर या अपने वर्तमान दावे में कुछ सुधार करके अपने समस्त विश्वासों को तार्किक रूप से संगत बना सकता है। जब कैलिक्लीज पहले कहता है कि आनन्द और शुभ (अच्छा) एक ही है और बाद में कहता है कि आनन्द शुभ से भिन्न है तो क्या वह अपनी बाद वाली मान्यता को संशोधित करके पहले वाली मान्यता को बचा नहीं सकता था ? तार्किक सुसंगति एवं सामंजस्य का परीक्षण करने वाला **अल्लेक्स** प्रतिवादियों के प्रस्तावों को सच साबित करने के लिए सक्षम नहीं लगता। इसी कारणवश रोबिन्सन निष्कर्ष निकालते हैं कि “**अल्लेक्स** का उद्देश्य लोगों को गलत विश्वासों से सच्ची अवधारणाओं की तरफ ले जाना नहीं है बल्कि लोगों को उनकी सैद्धांतिक निद्रा से जगाकर उनमें सच्ची जिज्ञासा पैदा करना है।” जैसे रोबिन्सन इसको रखते हैं सुकरात पद्धति व्यक्ति को यह तो बताती है कि वह गलत है पर क्यों गलत है? यह नहीं बताती। इसी प्रकार इरविन टिप्पणी करते हैं कि **अल्लेक्स** विश्वासों की तर्क के समक्ष स्थिरता को परखता है और यह कि “सुकरात के विश्वास तार्किक रूप से स्थिर हैं पर वह ज्ञान नहीं है। वे खण्डन विधि के आक्रमण के सामने टिक तो जाते हैं, पर सुकरात यह साबित नहीं कर सकते कि सत्य होने के कारण टिके हैं।” इस तरह इरविन सुकरात की प्रदर्शित अज्ञानता को सच मानते हैं।

इस प्रकार कुछ विद्वान एवं कई बार सुकरात खुद भी, कहते हैं कि उनकी पद्धति ज्ञान व सत्य की ओर ले जाती है। लेकिन दूसरे विद्वान मानते हैं कि न तो सुकरात स्वयं ज्ञानी हैं न ही उनकी पद्धति ज्ञानमीमांसकीय सुनिश्चितता की ऊंचाइयों को प्राप्त कर

सकती है, यह पद्धति तो बस तार्किक संगति भर का परीक्षण कर सकती है। सुकरात के विरोधाभास उनके जीवन एवं उनकी पद्धति की बिल्कुल विपरीत व्याख्याओं की तरफ ले जाते हैं। सुकरात ज्ञानी हैं तथा सुकरात ज्ञानी नहीं हैं, दोनों ही को प्रमाणित करने के लिए लिखित प्रमाण व पाण्डित्य पूर्ण तर्क उपलब्ध हैं। सुकरात की पद्धति सत्य व ज्ञान को प्राप्त कर सकती है तथा वह केवल तार्किक सुसंगति का परीक्षण कर सकती है। ये दोनों ही बातें साबित करने के लिए भी अनेक लिखित प्रमाण एवं पाण्डित्य पूर्ण तर्क उपलब्ध हैं। स्पष्टतः जो सुकरात की अज्ञानी होने की घोषणा को ईमानदारीपूर्ण मानते हैं वे उनकी विधि के ज्ञानमीमांसकीय परिणामों को भी सीमित ही मानते हैं, उनकी तुलना में जो सुकरात को ज्ञान का उद्गम मानते हैं। यदि सुकरात को सत्य का ज्ञान है तो उनकी पद्धति यह ज्ञान प्राप्त करवा सकती है, यदि वह अज्ञानी है तो उसकी पद्धति यह ज्ञान प्राप्त नहीं करवा सकती।

सुकरात के विरोधाभास एवं सुकरात के समकालीन आह्वान

तो फिर असली सुकरात कौन है ? आज जब हम उनके गुणगान कर रहे होते हैं और उनकी पद्धति की सराहना कर रहे होते हैं तो कौन से सुकरात का आह्वान करते हैं ? मूल-पाठ (सुकरात के संवादों के) से उठे विरोधाभास सुकरात संबंधी समकालीन संदर्भों को प्रकाशित करते हैं। क्योंकि वे विरोधाभास हमें यह समझने का एक रास्ता दिखाते हैं कि कैसे सुकरात की छवि के विभिन्न उपयोग संभव हैं। और क्यों दर्शन एवं राजनीतिशास्त्र में मतवैभिन्य रखने वाले विद्वान एक साथ उनकी प्रशंसा कर सकते हैं।

सुकरात के समकालीन आह्वानों का एक विलक्षण पहलू उनकी लगभग सर्वसम्मत प्रशंसा है। निम्नलिखित सूची जरूर सम्पूर्ण नहीं है पर प्रेरणा एवं मार्गदर्शन के लिए सुकरात की तरफ देखने वालों की विविधता का वह सही ढंग से प्रतिनिधित्व करती है। शिक्षा के क्षेत्र में, मोरटिमर एडलर के पाइडिया प्रस्ताव के अनुसार शिक्षण का उपयुक्त तरीका “सुकरात का तरीका ही होना चाहिये। इस तरीके को घात्री-प्रणाली कहा जा सकता है क्योंकि यह विद्यार्थी के विचार को जन्म देने में मदद करती है।” नील पोस्टमैन सुकरातीय विधि को (शिक्षाक्रम में) कचरे की पहचान के लिए आदर्श विधि मानते हुए प्रशंसा करते हैं। थियोडोर साइजर ने कोअलिशन आफ ऐसेशियल स्कूल्स नामक उनके माध्यमिक विद्यालय सुधार आन्दोलन में सुकरात की पद्धति को बढ़ावा दिया है। और गैरथ मैथ्यूज छोटे बच्चों को सुकरात जैसे संवादों में भागीदार बना कर उन्हें फलसफा करना सिखाते हैं। मनोविज्ञान के क्षेत्र में सिगमण्ड फ्रायड सुकरात

की प्रशंसा करते हैं एवं संवाद द्वारा मानसिक विश्लेषण का एक सिद्धांत तैयार करने में सुकरात की पद्धति का प्रयोग करते हैं। बच्चों के नैतिक विकास के क्षेत्र में लारेंस कोहलबर्ग की पथ प्रदर्शक रचनाओं में उन्होंने सुकरात की पद्धति की इस प्रकार प्रशंसा की है “कट्टर सैद्धांतिकरण की खाई और गैर जिम्मेदाराना सापेक्षवाद या मूल्य स्पष्टीकरण से बचने का रास्ता है सुकरातीय संवाद - जिससे बच्चों के विकास को अगले चरण के लिए उत्प्रेरित किया जा सकता है।” राजनीति के क्षेत्र में, केवल दो ही नाम लें तो, जॉन स्टुअर्ट मिल, सुकरात को एक महानायक मानते हैं तो एलन ब्लूम, जो काफी अलग राजनीतिक विचारधारा से हैं, भी सुकरात को नायक मानते हैं। अन्त में दर्शन के क्षेत्र में नव-कांटवादी लियोनार्ड नेल्सन हैं जो सुकरात की पद्धति के दर्शन के क्षेत्र से लुप्त हो जाने पर दुःख प्रकट करते हैं एवं सुकरात की पद्धति द्वारा सत्य की खोज को नया जन्म देने के लिए गणितज्ञों एवं वैज्ञानिकों की तरफ देखते हैं। हैन्स जार्ज गैडमर हैं जिन्हें व्याख्यात्मक संवादों के केन्द्र में सुकरात के अन्वेषण का अहसास होता है और रिचर्ड रोटी हैं जो सुकरात की ज्ञान मीमांसकीय विनम्रता की प्रशंसा करते हैं तथा उन्हें सत्त जिज्ञासा एवं खुले दिमाग का प्रतीक मानते हैं। संक्षेप में कहा जाए तो, भिन्न भिन्न प्रकार की तात्विक एवं राजनीतिक विचारधाराओं में सुकरात की छवि एवं उनकी पद्धति के समकालीन समर्थक पाये जाते हैं।

यह कैसे होता है कि एक दूसरे के वैसे घोर विरोधी लोग भी सुकरात की समान रूप से प्रशंसा कर लेते हैं ? रोटी और ब्लूम दो दार्शनिक जिनके बीच लगभग कुछ भी समान नहीं है सुकरात के बारे में सहमत हैं, यह कैसे ? या नेल्सन एवं गैडमर, एक कांटवादी और एक व्याख्यावादी (हरमेन्यूटिसिस्ट) सुकरात की प्रशंसा के लिए एक हैं ? मेरा मानना है कि इसका उत्तर इस बात में निहित है कि प्रत्येक व्यक्ति उपरोक्त विरोधाभासों को कैसे देखता है। सुकरात एवं उनकी पद्धति के बारे में विद्वानों के मतभेद उनकी प्रचलित समालोचनाओं में प्रतिबिंबित होते हैं। सुकरात के नाम व पद्धति के आह्वान के कारण विशेषकर इस पर निर्भर करते हैं कि कोई उन्हें सत्य का ज्ञानदाता मानता है या ईमानदार अज्ञानी मानता है। इस प्रकार, दुनिया के नेल्सन एवं ब्लूम जैसे लोग सुकरात की सत्य की अविवाद्य खोज के लिए प्रशंसा करते हैं, वहीं गैडमर एवं रोटी ठीक विपरीत कारणों के लिए सुकरात की स्तुति करते हैं; कि सुकरात जानते हैं कि उन्हें सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती, अतः वे संवाद एवं सवाल के प्रति सत्त रूप से खुला जीवन जीते हैं। वे यथार्थवादी एवं मीमांसाविद् जो सत्य में विश्वास करते हैं सुकरात के निश्चित रूप से ज्ञानी स्वरूप को स्वीकार करते हैं; वे उत्तर-आधुनिकवादी एवं ऐतिहासिकतावादी जो सत्य को सापेक्ष मानते हैं, सुकरात के यथार्थ में अज्ञानी स्वरूप को मानते हैं। विरोधाभासों

के कारण सुकरात की छवि ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ देती ही है जो सत्य एवं ज्ञान पर किसी सिद्धांत को स्वीकार करता है।

रोटी दो सुकरातों की इस दुविधा की व्याख्या करने के लिए एक “प्लेटोवादी सुकरात” एवं एक “डिवीवादी सुकरात” की पहचान करते हैं। रोटी के अनुसार प्लेटो सुझाते हैं कि दर्शन, सुकरात की पद्धति के माध्यम से, हमें संसार के बारे में प्रश्नों के उत्तर एवं ज्ञान की प्राप्ति करवाता है, जैसा कि संवादों में वर्णित है। रोटी लिखते हैं : ड्यूवी का सुझाव है कि हम इतिहास एवं नृतत्वशास्त्र की तरफ मुड़े जिससे तुलनात्मक रूप से दुनिया को समझा जा सके। बहुत कुछ उसी तरह जैसे सुकरात संवाद में भागीदारी के लिए सदैव साथी खोजते रहते थे। रोटी लिखते हैं: “जब तक द्वंदात्मक तर्क के मार्ग के अंत में वास्तविक शुभ (एक मात्र शुभ) का विचार प्राप्त न हो प्लेटो के लिए सुकरात के जीवन की कोई सार्थकता नहीं है। ड्यूवी के लिए सुकरात की जिंदगी खुलेपन और जिज्ञासा के प्रतीक के रूप में ही सार्थक थी।”

जाहिर है प्लेटो के सुकरात और ड्यूवी के सुकरात विरोधाभासों के दो पहलू हैं ; प्लेटो के सुकरात सत्य को जानते हैं, ड्यूवी के सुकरात सहर्ष अज्ञानी हैं।

किंतु मुझे लगता है कि रोटी का नामकरण गलत है क्योंकि प्लेटो के सुकरात में दोनों ही स्वरूप समाहित हैं। जैसा कि हमने देखा है, प्लेटो के सुकरात खुद विरोधाभासी हैं; प्लेटो के संवादों से यह निर्णय करना कठिन है कि सुकरात के अज्ञानी होने का दावा सच है कि नहीं, एवं सुकरात की पद्धति का अपने में क्या लक्ष्य था? मेरी राय में इससे एक अच्छा नामकरण (अभिधान) एवं विभाजन “नैतिक सुकरात” एवं “तत्वमीमांसक सुकरात” हो सकता है। नैतिक सुकरात वह जो प्लेटो के आरंभिक संवादों में नजर आते हैं। इन संवादों में सुकरात मुख्यतः अपने प्रतिवादियों से अच्छी जिंदगी जीने के बारे में प्रश्न करते रहते हैं। इस प्रकार दैवी आज्ञा का पालन घोषित पंडितों के लिए यह सिद्ध करके करते हैं कि वे इतने बुद्धिमान नहीं हैं जितना कि अपने आपको समझते हैं। (विशेषरूप से एंपालिजि, फीडो, चार्मिडीस में)। ध्यातव्य है कि इन आरंभिक संवादों की बाद वाले संवादों की अपेक्षा संभ्रम में समाप्ति की संभावना कहीं ज्यादा है। बीच के काल वाले एवं बाद के संवादों के सुकरात को आध्यात्मिक सुकरात कह सकते हैं। इन संवादों में सुझाव जिरह में अधिक प्रबल है, सुकरात कोई एक पक्ष लेते अधिक बार दिखते हैं, उपदेश देने की प्रवृत्ति बढ़ गई है और कई बार स्मृति के सिद्धांत को प्रस्तुत करते हैं, जो कि आरंभिक संवादों में नहीं है। और तो और आगे के संवादों में अलेंकस् प्रायः गायब

ही हो जाता है। राबिनसन की व्याख्यानसुसार “संभाषणों में वास्तविक अल्लेक्स अपने मूलरूप में क्रमशः खत्म हो जाता है एवं खण्डन कम स्थान लेने लगता है।” सुकरात सत्य के प्रति चिंतित नजर आने लगते हैं और उनकी अपने अज्ञान की घोषणा करने की आवृत्ति कम हो जाती है। सुकरात ने अपने आपको कितनी बार अज्ञानी घोषित किया है, इसकी सूची इरविन ने बनाई है और उसमें वह दृष्टांत देते हैं कि गार्जियाज तक सुकरात ने ऐसा ग्यारह बार किया है और उसके बाद मात्र चार बार। ब्रिकहाउस एवं स्मिथ की सूची के अनुसार सुकरात की (अपने अज्ञानी होने की) घोषणा गार्जियाज तक सोलह बार है, उसके बाद केवल तीन बार ही है।

पारदर्शी अन्वेषण एवं दुनियां के प्रति जिज्ञासा के एक जीवंत उदाहरण के रूप में सुकरात में जो लोग श्रद्धा रखते हैं वे लोग नैतिक सुकरात को मानते हैं, पर जो लोग उन्हें सत्यान्वेषण एवं ज्ञान का मूर्तरूप मानते हैं वे लोग आध्यात्मिक सुकरात को स्वीकार करते हैं। दोनों सुकरात को संवादों में देखा जा सकता है। व्लास्तोस एवं रोबिनसन के कथनानुसार होता यह है कि संवाद जैसे जैसे आगे बढ़ते हैं वैसे वैसे सुकरात का व्यक्तित्व प्लेटो के प्रवक्ता में रूपांतरित होता जाता है। मध्य के संवादों में ‘स्वभाव में एक स्पष्ट परिवर्तन’ का रोबिनसन उल्लेख करता है। व्लास्तोस लिखते हैं कि पुनः स्मरण का सिद्धांत “उन सभी चीजों से जिन्हें हम एल्लेक्स के सुकरात से जोड़ते हैं कोसों दूर है। (और कि) जब प्लेटो स्मृति के सिद्धान्त को सुकरात के मुंह में रख देते हैं तो हम जान जाते हैं कि खंडन प्रधान संवादों का पक्षधर (सुकरात) अपने से बड़ी मेधा (प्लेटो) में तिरोहित होकर सुख मृत्यु को प्राप्त हो गया है।” इस तर्क के अनुसार आरंभिक संवादों में ऐतिहासिक सुकरात का चित्रण हुआ है और मध्य एवं उत्तर संवाद प्रमुखतः प्लेटो की रचना एवं विचार हैं।

वर्तमान संदर्भ में सुकरात की पद्धति

लेख के इस अंतिम भाग में, मैं बहुत संक्षिप्त एवं स्थूल रूप में सुकरात के बारे में अपनी समझ रखना चाहता हूँ। सुकरातीय शिक्षा एवं उनकी पद्धति के विशेष स्वरूप के लिए अपने आग्रह से इस लेख का समापन करूंगा।

ज्ञान के क्षेत्रों एवं राजनैतिक विचारों की सीमाओं के आर-पार सुकरात का हवाला इतना ज्यादा बार दिया जाना अद्भुत है। पर इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि सुकरात की विधि पर इतना ध्यान दिये जाने एवं उसकी इतनी प्रशंसा होने के बावजूद इस विधि का उपयोग इतना कम हो रहा है। और जहां उपयोग हो भी रहा है वहां विधि की विकृत एवं गलत समझ के साथ, जैसा कि अनेक बार दस्तावेजीकरणों में स्पष्ट हुआ है। अमेरिका में

प्रायः सभी स्तर के विद्यालयों में कक्षाएं लगभग सदा ही अध्यापक केंद्रित होती हैं। अध्यापक व्याख्यान देने या सूचना देने का काम करते हैं। विद्यार्थी उस सूचना (जानकारी) को पूरी निष्क्रियता के साथ ग्रहण करके परीक्षा पास करने की दृष्टि से कंठस्थ कर लेते हैं। हालांकि सुकरात की पद्धति के बहुत से समर्थक हुए हैं लेकिन फिर भी यह पद्धति अभी तक विद्यालय में किसी भी छात्र के अनुभव का छोटा सा हिस्सा तक नहीं बन पाई है।

कुछ स्थानों पर जहां इस पद्धति के प्रयोग का ढिंढोरा पीटा जाता है, उदाहरण के लिए कुछ विधि संस्थानों में, इस पद्धति को ऐसा विकृत कर दिया है कि इसे पहचानना भी मुश्किल है। विधि प्राध्यापक विद्यार्थियों की नामावली लेकर कक्षा मंच पर बैठ जाते हैं और इच्छानुसार विद्यार्थियों से तथ्यात्मक जानकारी और विश्लेषणात्मक टिप्पणियों की मांग करते हैं। दी पेपरचेज का कुख्यात प्राध्यापक किंगस्टोन सुकरातीय विधि का उपयोग करने वाले विधि महाविद्यालय के प्राध्यापक का उदाहरण बन गया है। सुकरात पद्धति की यही वह छवि है जिसके बारे में लैरी गुनियर ने हाल की अपनी पुस्तक ‘बिकमिंग जैन्टलमैन’ में अनावश्यक स्पर्धाकारी एवं वास्तव में लैंगिक भेदभावपूर्ण कहकर निंदा की है। पर यह सुकरात पद्धति की अति दरिद्रतापूर्ण समझ है, क्योंकि संवादों में नजर आती शैक्षणिक पद्धति का इच्छानुसार प्रश्न या टिप्पणियों की मांग करने से कोई संबंध नहीं है।

बहरहाल यदि तकाजे पर मताभिव्यक्ति नहीं तो इस पच्चीस सदी पुरानी शैक्षणिक विधा का कौनसा स्वरूप उपयुक्त माना जाए? मेरा सुझाव है कि सुकरात की वह पद्धति जो सत्य को वांछित लक्ष्य या परिणाम के रूप में अलग पहचानती है। (यहां ‘वांछित लक्ष्य’ की प्राप्य लक्ष्य से अलग पहचान की बात लगती है। प्राप्य लक्ष्य वह जो प्राप्त हो जाये, ‘वांछित लक्ष्य’ वह जो सदा वांछनीय तो बना रहे पर पूरी तरह प्राप्त होना संभव ना हो।-अनुवादक) आज के विद्यार्थियों के लिए सर्वाधिक उपयोगी होगी। मैं नैतिक सुकरात को चुनता हूँ, उस सुकरात को जो शाश्वत और परम सत्य को प्राप्त करने के दावों के प्रति शाश्वत रूप से संदेहशील है। वह सुकरात एवं सुकरातीय पद्धति जिसका मैं आह्वान करता हूँ एक गहरे ज्ञानमीमांसकीय संदेह से पहचाने जाते हैं। यह वह सुकरात है जो इस बात को ही संदेह की नजर से देखता है कि ज्ञान कभी भ्रमातीत भी हो सकता है।

सत्य को सुकरात की खोज के इच्छित लक्ष्य के रूप में पृथक पहचान क्यों की जाए? इसके दो कारण हैं: प्रथम, मैं स्वीकार करता हूँ कि अल्लेक्स केवल परस्पर सुसंगता का परीक्षण करने के लिए है, सत्य के दावों को उचित ठहराने में वह अक्षम है। दूसरा

और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण, ऐसा नहीं कि हम सत्य की धारणा छोड़ दें, बल्कि सत्य हमारे लिए एक नियामक आदर्श होना चाहिये। अगर सुकरात की पद्धति सत्य के किसी भी दावे को स्थापित करने में सफल नहीं होती है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि हम सत्य के विचार को ही त्याग दें। सत्य हमारा आदर्श होना चाहिये एवं हमें उसकी खोज करनी चाहिए। पर हमें यह समझ लेना चाहिये कि ज्ञान पूर्णतया असंदिग्ध नहीं होता तथा भविष्य में संशोधन के लिए खुला रहता है। हमारे विश्वासों को सत्य सिद्ध करने के लिए उपयुक्त प्रमाण हो सकते हैं तथा वे विश्वास व्यापक तौर पर स्वीकार्य भी हो सकते हैं, फिर भी हमें समझना चाहिये, जैसा व्लास्तोव के तर्कानुसार सुकरात समझते हैं कि सत्यता के दावों के बारे में “अंतिम निर्णय कभी नहीं हो सकता। सत्य के वे सभी दावे वर्तमान विमर्श में पुनर्विचार के लिए खुले हैं। इस विमर्श में वैसी ही प्रक्रिया पूर्व निर्णय को बदल सकती है। जिस तरह की तर्क की प्रक्रिया से पुराना निर्णय लिया गया था, हो सकता है पुराना निर्णय अधूरे विमर्श के आधार पर हुआ हो, या संबंधित मान्यताओं का सर्वेक्षण अधूरा रहा हो या फिर तार्किक निष्कर्ष ही गलत हो गया हो।”

स्पष्टतः सत्य पर बहुत सारा दार्शनिक साहित्य उपलब्ध है। स्थानाभाव के कारण मैं यहाँ तर्क नहीं करूँगा कि क्यों मैं सत्य को एक प्राप्त किये जा सकने वाले आदर्श के रूप में नहीं बल्कि एक नियामक आदर्श के रूप में मानता हूँ। लेकिन मैं सत्य को सुकरात की पद्धति के वांछित लक्ष्य एवं प्राप्य लक्ष्य के रूप में विभाजित करने के लिए एक और उचित कारण पेश कर सकता हूँ। वह कारण सांस्कृतिक अनेकत्व की वास्तविकता में निहित है। एक बहु संस्कृति समाज में अच्छी जिंदगी की भिन्न भिन्न धारणाएँ होती हैं और उनमें से कोई भी निश्चित एवं अंतिम रूप से सर्वश्रेष्ठ नहीं कही जा सकती। हालांकि शुभ की धारणाएँ अच्छी व बुरी अवश्य होंगी, फिर भी, समाज की विविधता हमें उनमें से किसी एक को मानवीयता के सबसे ऊँचे आदर्श का दर्जा देने से रोकती है।

इस प्रकार मेरी समझ में सुकरात की पद्धति का महत्व नैतिक शिक्षा पर आग्रह में उतना नहीं है जितना कि नागरिक शिक्षा को सुदृढ़ कर सकने की इसकी सामर्थ्य में है। जहाँ कुछ हद तक सुकरात एवं उससे भी अधिक प्लेटो सद्जीवन की एक खास धारणा को मान कर चलते हैं, कि प्रत्येक व्यक्ति को कैसा जीवन जीना चाहिये, आधुनिक उदारवादियों के पास इस सुनिश्चितता का सुख भी नहीं है। बहुलवाद ने यह सुख उनसे छीन लिया है। अतः सुकरात की पद्धति एक बहुलवादी प्रजातंत्र में राजनीतिक सहभागिता के लिए आवश्यक समालोचनात्मक विचारणा के कौशल एवं व्यवहार को सिखाने में विद्यार्थियों की सशक्त रूप से मदद कर

सकती है। इससे भी अधिक, वह उन्हें सद्जीवन की विभिन्न धारणाओं का मूल्यांकन करके उनमें से चयन करने की समझ दे सकती है। बहुलवाद के यथार्थ को स्वीकारने का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि हम सापेक्षवादी बन जायें और कोई भी नैतिक ध्येय हमें स्वीकार हो। बहुलवादी प्रजातंत्र में, जो व्यक्तिगत स्वायत्तता एवं लक्ष्यों पर पुनर्विचार की छूट को अमूल्य मानता है, सुकरात की पद्धति नागरिक शिक्षा का एक सशक्त माध्यम बन जाती है।

हाल ही में प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकों में इस विचार की दलील दी गई कि प्रजातंत्र में नागरिकों के शिक्षा रूपी आहार में सुकरात की पद्धति एक आवश्यक एवं प्रधान हिस्सा है। जे. पीटर यूबेन सुकरात को विद्वत्परिषद से बाहर निकालकर इसे नागरिक शिक्षा की एक परियोजना का केन्द्र बनाकर सड़क पर लाना चाहता है। मार्था निसबम का विश्वास है कि एक उदारवादी प्रजातांत्रिक समाज की निरंतरता उसके विद्यार्थियों एवं वयस्कों द्वारा सुकरात जैसा तार्किक चिंतन करने की क्षमता पर निर्भर है। वह लिखती हैं, “एक प्रजातंत्र जो हित सिद्धि के लिए प्रतिस्पर्धी समूहों का बाजार मात्र न होकर विचारशील एवं विमर्श पूर्ण हो, एक प्रजातंत्र जो सर्वहित का उचित ध्यान रखता हो, उसे पोषित करने के लिए हमें ऐसे नागरिकों को पैदा करना चाहिए जो अपने विश्वासों के बारे में सुकरात जैसे सवाल करने की क्षमता रखते हों।”

जिस सुकरात का मैं प्रशंसक हूँ उस का सर्वश्रेष्ठ वर्णन “एक जिज्ञासु एवं आत्मविश्वासपूर्वक विनम्र व्यक्ति” है। सुकरात की छवि सतत् मानसिक खुलेपन एवं दूसरों के साथ संवाद के लिए तत्परता के आदर्श की सशक्ति प्रतीक है। साथ ही संवाद से अपेक्षा यह नहीं है कि अंतिम सत्य की स्थापना की जाये, एक सार्वभौम चरम सत्य की, उनके लिए भी जो संवाद में शामिल ही नहीं हैं। वास्तव में सुकरात की छवि का आकर्षण सार्वभौमिक अन्वेषण के उदाहरण के रूप में है, इस अन्वेषण में नागरिकों की भागीदारी एवं जुड़ाव को बढ़ावा देने के लिए है। इसी तरह, मैं सुकरात की पद्धति की विरासत का प्रशंसक हूँ क्योंकि वह पद्धति विश्लेषण के कौशल एवं दार्शनिक व्यवहार के विकास की एक बहुत समर्थ विधा है। और विश्लेषण का कौशल एवं दार्शनिक व्यवहार समकालीन प्रजातंत्र में अमूल्य साबित होंगे। यदि सुकरात के लिए बिना परीक्षण की हुई जिंदगी जीने लायक नहीं थी और उनकी पद्धति ने परीक्षण की हुई जिंदगी जीने का एक साधन दिया, तो एक उदारवादी प्रजातंत्र के नागरिकों के लिए भी (कहा जा सकता है कि) बिना परखी जिंदगी उनकी स्वायत्तता को विकृत करती है एवं उनकी स्वतंत्रता को घटाती है। इस प्रकार सुकरात की पद्धति विविधताओं का सामना करते हुए इनमें फूलने फूलने का एक तरीका बन जाती है। ♦